



ISSN Print: 2394-7500
 ISSN Online: 2394-5869
 Impact Factor: 8.4
 IJAR 2021; 7(2): 391-394
www.allresearchjournal.com
 Received: 06-12-2020
 Accepted: 21-01-2021

डॉ. नीरव अडालजा

एसोसिएट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग,
 डॉ. भीम राव अम्बेडकर कॉलेज,
 दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली,
 भारत

परम्पराओं और संस्कारों की बेड़ियों में जकड़ी हुई भारतीय स्त्री 'माई' गीतांजलि श्री

डॉ. नीरव अडालजा

प्रस्तावना:

उपन्यास लेखिका के रूप गीतांजलि श्री को जिस उपन्यास ने सर्वाधिक प्रतिष्ठा प्रदान की है, वह है—'माई'। 'माई' एक ऐसी औरत की कथा है, जो अपनी अस्मिता और पहचान अपने परिवार के लिए विसर्जित कर देती है। माई पूरे परिवार को सहेजती है, संभालती है, घर के सारे काम उसके जिम्मे मढ़े हैं, जिन्हें वह चुपचाप करती चली जाती है, लेकिन उसकी इच्छाएं व भावनाएं क्या हैं, इससे परिवार के किसी सदस्य को कोई सरोकार नहीं है, कोई भी उसके मन को पहचानना नहीं चाहता। उसकी पहचान 'माई' के फ्रेम से बाहर नहीं आ पाती। परिवार के लिए हर परिस्थिति, हर दबाव व संघर्ष का सामना करने वाली माई परिवार की धुरी है। ऐसी धुरी, जो परिवार को मजबूती देती है, लेकिन स्वयं मूक सी तिल-तिल गलती रहती है। हर बात को बिना प्रतिवाद किए चुपचाप सहना उसका स्वभाव बन गया है। मानो यही उसकी नियति है और यही उसके होने का सत्य जमींदार ड्योढ़ी की चार दीवारी में सम्पूर्ण जीवन बिता देने वाली माई भले स्वयं सब कुछ सहती है, लेकिन उसमें अपनी संतति को उस चारदीवारी से मुक्त करवाने की गजब की इच्छा शक्ति है। उसकी इच्छाएं, अपेक्षाएं व सपने अपनी संतति के माध्यम से पूर्णता की तलाश करते हैं।

'माई' एक चरित्र प्रधान उपन्यास है, जिसमें गीतांजलि श्री ने माई के माध्यम से स्त्री अस्मिता, स्त्री की पहचान का संकट, उसे उसकी बंधी बंधाई भूमिका में स्वीकारने की त्रासदी और स्त्री का अपनी संतति के परिपूर्ण विकास के लिए संघर्ष जैसी समस्याओं को कथानक का केन्द्रबिन्दु बनाया है। 'माई' उपन्यास में परंपरा और नैतिकता का द्वन्द्व भी उभारा गया है। माई की बेटी सुनैना व बेटा सुबोध बड़े होने पर माई का मर्म समझते हुए उसे ड्योढ़ी की कैद से मुक्त कराना चाहते हैं, लेकिन माई की असली कैद ड्योढ़ी है, वह वहीं तिल-तिल कर मर जाना चाहती है। इस प्रकार नई व पुरानी पीढ़ी का संघर्ष व आपसी द्वन्द्व भी कथानक के माध्यम से उद्घाटित हुआ है। माई की बेटी सुनैना (नरेटर) के माध्यम से प्रस्तुत एक औरत की मूक गाथा 'माई' उपन्यास स्त्री-विमर्श से जुड़े अनेक महत्वपूर्ण मुद्दों पर चिन्तन की मांग करता है।

'माई' उपन्यास में दादा जी, दादी, माई, बुआ, बाबू जैसे चरित्र ऊपर से तो रूढ़ियों-परम्पराओं से बंधे हैं और उनकी अनुपालना दृढ़ता से करवाते भी हैं। वे जिस नैतिकता और शुचिता का उपदेश देते हैं, उसी को तोड़ते हैं, लेकिन गोपन के साथ। इस प्रकार उनकी नैतिकता संदिग्ध बनी रहती है—खास तौर पर यौनशुचिता और मद्यपान को लेकर। ये सभी पात्र पुरानी पीढ़ी के हैं। इनमें दो पीढ़ियां सम्मिलित हैं। इस रूढ़िवादी, दोहरी ज़िंदगी जीने वाली, प्रगति विरोधी और समय के साथ स्वयं को न बदलने वाली पीढ़ी के विरोध में एक माई और बहिन-सुबोध और सुनैना-एक जोड़ी है, जो तरक्कीपंसद है और नए ढंग से सोचती है। वे अपने दादा, दादी, माता-पिता सबकी दोहरी एवं ढोंग भरी जीवन शैली को नापसंद करते हैं। यह परम्परा-भंजक नई पीढ़ी है। इनकी सबसे बड़ी चिंता अपनी 'मां' के बारे में है, जो सब कुछ जानती है पर विरोध नहीं करती; दमित होती चली जाती है। वह अपने बच्चों की प्रगतिशीलता में मौनभाव से सहयोग करती है, बाधा नहीं बनती। सम्पूर्ण उपन्यास में सुनैना तथा सुबोध की गहरी चिंता इसी बात को लेकर अग्रप्रस्तुत की गई है कि माई यानी स्त्री अपने मौन को तोड़कर किस प्रकार प्रतिरोध करे, संघर्ष की स्त्री मुद्रा अपनाए। उसका चरित्र उपन्यास के विकास के साथ-साथ 'क्रिएटिव' जैसा होता जाता है।

'माई' उपन्यास का केन्द्रीय पात्र माई जमींदार परिवार (ड्योढ़ी) की रीढ़ है, लेकिन विडम्बना यह है कि उसकी स्वयं की रीढ़ रोगग्रस्त हो चुकी है, जिसकी वजह से वह झुकी रहती है। वैसे वह यों भी सदा से झुकती ही रही है। उपन्यास का आरंभ ही माई की कमजोर रीढ़ के बयान से होता है। नरेटर (सुनैना) के शब्दों में—“हम तो शुरू से जानते थे कि माई की रीढ़ की हड्डी कमजोर है।

Corresponding Author:

डॉ. नीरव अडालजा

एसोसिएट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग,
 डॉ. भीम राव अम्बेडकर कॉलेज,
 दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली,
 भारत

डॉक्टर ने भी बाद में यही कहा कि हरदम झुकने वालों का तत्व घिस जाता है और नसों पर यहां-वहां दबाव पड़ने लगता है कि यो झुकने वाले को झुकने में भी दर्द होता है, तनने में भी दर्द होता है।^[1] माई पूरी तरह ड्योढ़ी को समर्पित है। उसका पूरा दिन रसोई में बीतता है। यों घर में नौकर-चाकरों की कमी नहीं। माई के साथ रसोई में हाथ बंटाने को हरदेई है और रसोई से बैठक तक काम संभालने के लिए भोन्दू। इसके अलावा ड्योढ़ी में कुएं के पास भिश्ती, भंगी, माली, चौकीदार आदि नौकरों का बड़ा कुटुम्ब भी मौजूद है, लेकिन चूंकि माई घर की रीढ़ है, अतः नौकरों के बावजूद घर के सदस्यों आने जाने वालों की छोटी-बड़ी जरूरतों, खान-पान, सबकी जिम्मेदारी माई की ही है। माई सिर्फ काम करती, कम बोलती व दिन भर झुकी रहती। यह झुकना धोने, पीसने, बेलने व सेंकने से लेकर माई के भीतर तक पैदा हुआ है, जहां तक परिवार के किसी भी सदस्य की दृष्टि नहीं जाती। त्रासदी यह है कि इस झुकी हुई स्त्री को उसके झुकने, चुप रहने व सब कुछ सहने के लिए सराहा जाता है। पति से प्रतिवाद करना तो दूर की बात, माई पर अपना रौब डालने या अपनी बात मनवाने के लिए उन्हें कुछ कहने की जरूरत ही नहीं थी। बस! माई को दबाने या झुकाने के लिए इशारा भर काफी होता। सुनैना के अनुसार—“हमें ने देखा कि बाबू ने आंख भर उठा दी और माई सिमटकर दरवाजे की ओट में भेड़ की तरह सट गई।^[2] घर में तीज त्यौहार हो, कोई धार्मिक पर्व हो या ड्योढ़ी में पूजा पाठ का अवसर, माई आए दिन कोई न कोई व्रत रखती। दिन भर औरों के लिए खाना बनाती लेकिन स्वयं औरों की जूटन पर ज़िदा रहती। जब किसी के खाने से कुछ बच जाए या उसे पंसद न आए, बासी रह जाए, सब कुछ माई के हिस्से में आता। माई उस इच्छाहीन स्त्री का प्रतीक है, जो स्त्री के लिए नियत परंपरागत पारिवारिक मान्यताओं और रूढ़ियों का शिकार है। वह स्वयं इच्छाहीन होकर भी दूसरों को इच्छाओं की कठपुतली है। उसका व्यक्तित्व इतना दबा और घुटा हुआ है कि वह किसी बात के प्रति विरोध प्रकट नहीं करती। नरेटर के शब्दों में—“वह कठपुतली थी इतनी कि डोरों पर फिरकते हम उसे देखते हुए बड़े हुए। पर इतना खिंचने के बाद भी वह टुकड़ों में छितरी नहीं, साबुत रही और खिंचती रही, अपनी संचालन की डोर खुद भी थामे।^[3] माई (वास्तविक नाम ‘रज्जो’) को उसकी परम्परागत भूमिका में स्वीकार करते हुए कभी किसी ने उसके भीतर दबी ‘रज्जो’ को पहचानने की कोशिश न की। ‘रज्जो’ (माई) के माध्यम से इस उपन्यास में स्त्री की पहचान के संकट को एक महत्वपूर्ण प्रश्न के रूप में उभारा गया है। यह स्त्री-विमर्श का एक महत्वपूर्ण मुद्दा है। रेखा कस्तवार के अनुसार—“यद्यपि नई नैतिकता के परिप्रेक्ष्य में ‘नई स्त्री’ ने अपने व्यक्तित्व, अपनी अस्मिता को पहचान देने का प्रयास किया है, पर अब भी व्यक्तित्व, की भूमिकाओं में तलाशने का सिलसिला थमा नहीं है। विशेषकर पिछली पीढ़ी की स्त्री को हम आज भी भूमिकाओं में परिभाषित करते और जीते हैं। माई में यह प्रश्न शिद्दत से उठाया और विचारा गया है।^[4]

विचारधारा की दृष्टि से इस उपन्यास का प्रतिपाद्य बहु-आयामी है। इसका केन्द्रीय प्रतिपाद्य तो स्त्री-मुक्ति अर्थात् स्त्रीवाद है, किन्तु उसके समानान्तर तरक्कीपसंद विचारधारा भी चलती रहती है। लेखिका ने इसके प्रति अपनी प्रतिबद्धता को कई रूपों में मुखरित किया है। इसका पहला तरीका बहुत ही रूढ़ और गौर-कलात्मक है, जहां वह ‘तरक्की पसंद’ शब्द का ही इस्तेमाल कर देती हैं (पृ.100)। इसका दूसरा तरीका ‘प्रतिबद्धता’ के पर्याय के रूप में ‘पक्की नज़र और पैनी नज़र’ (पृ.113) जैसी शब्दावली का प्रयोग है। इस प्रकार के प्रयोग विशुद्ध अभिधात्मक और गौर-कलात्मक भी हैं। तीसरा तरीका कलात्मक है, जो घटनाओं और स्थितियों से प्रगतिशीलता को प्रतिपादित करता है। गीतांजलि श्री ने इस उपन्यास में प्रगतिशीलता को जिन मुद्दों से रेखांकित करने की कोशिश की है, उनमें जातिवाद, सांप्रदायिकता, रूढ़ियों, अंधविश्वासों से सोच को ऊपर उठाना है, खान-पान में विधि-निषेधों को समाप्त करना है, धार्मिक ढकोसलों पर प्रहार करना है, स्वतन्त्रता और संघर्ष की चेतना को जगाना और बढ़ाना है। यह तरक्कीपसंदगी सामंती जीवन पद्धति की अंगभूत ज़मींदारी पद्धति की आभिजात्य से भरी जीवन शैली का भी पुरजोर विरोध करती है।

सुनैना व सुबोध चाहकर भी अंत तक कोशिश करके भी माई को उसकी भूमिका से मुक्ति नहीं दिला सकते, न ही उसके अस्तित्व को कोई पहचान दे पाते हैं। सुनैना को माई की मृत्यु के बाद अहसास होता है कि वे माई को बदलने की कोशिश करते रहे पर उसका असली छोर कभी न पकड़ पाए। उसे अपने हिसाब से, अपनी नज़र से देखने, समझने व सुधारने की कोशिश में सब कुछ व्यर्थ हो गया। माई के न रहने पर सुनैना को अहसास होता है कि माई के भीतर के इंसान को सही रूप में न पहचाना पाना ही उसे चाहकर भी ड्योढ़ी से मुक्त न करवाने का कारण बना। माई को न पहचान पाना ही सबसे बड़ी चूक थी, जिसकी वजह से सुनैना व सुबोध माई को दूसरों से बचाते, उसे मजबूत बनाना सिखाते पर फिर भी माई को बदल न पाते—“बोला करो माई, लड़ा करो। जो होना चाहती हो वो होओ। इस तरह माई थी ही नहीं—झुकी, मूक, डरपोक छवि, जिसमें सिर्फ दूसरों के इशारे पर हरकत होती हम दया से भर जाते, चिढ़ जाते।^[5]

गीतांजलि श्री ने ‘माई’ उपन्यास में माई के माध्यम से पितृसत्तात्मक व्यवस्था में पिसती स्त्री का चित्रण किया है। सुनैना के दादा व बाबू दोनों अपनी-अपनी तरह से घर की स्त्रियों पर अपना-अपना वर्चस्व बनाए रखते हैं।

‘माई’ उपन्यास में संयुक्त परिवार में रह रही तीन पीढ़ियों की स्त्रियों, दादी, माई व सुनैना को दादा का वर्चस्व सहना पड़ता है। लड़की को बचपन से ही यह संस्कार दिया जाता है कि उसकी पहचान शादी के बाद बदल जाएगी। पति के परिवार के नाम से ही उसकी पहचान होगी। यानी उसकी अपनी कोई पहचान कभी भी न होती। पितृसत्तात्मक व्यवस्था का यह रवैया स्त्री के आत्म को विकसित ही नहीं होने देता। स्त्री में पिता, भाई और शादी के बाद पति पर निर्भर होने का स्वभाव बचपन से ही विकसित किया जाता है। पुरुष पर निर्भरता से मुक्ति स्त्री-विमर्श का एक अहम मुद्दा है।

सुनैना के बाबू के किसी अन्य स्त्री से विवाहेतर संबंध हैं। बाबू अक्सर उस औरत से मिलने जाते हैं। माई सब कुछ जानती है पर चुप रहती है। उपन्यास में बाबू द्वारा उस औरत को लखनऊ ले जाने की सूचना भी उपन्यास में मिलती है। बाबू ऑफिस का काम निकाल कर उस औरत से मिलने लखनऊ भी जाते हैं। माई न तो बाबू के इस संबंध का विरोध करती है और न ही अन्य लोगों द्वारा इस संबंध की चर्चा सुनकर बाबू का बचाव करती है। उसमें इस संबंध को लेकर कोई हीनभावना भी नहीं दिखाई देती। बस एक उदासीनता का भाव माई के भीतर घर कर गया है। अपने पति के विवाहेतर संबंधों के प्रति उपजी माई की यह उदासीनता उसके स्त्री होने की विवशता है। एक रोज क्लब में किसी परिचित के यह कहने पर कि उन्होंने बाबू को लखनऊ में किसी महिला रिश्तेदार के साथ देखा था, माई सौम्य रहकर उत्तर देती है कि लखनऊ में उनके कोई रिश्तेदार नहीं रहते। माई ने चुप रहकर भी भीतर ही भीतर इस संबंध में अपना विरोध दर्ज किया था। पर उसकी आवाज घर की चारदीवारी में ही घुट कर रह गई। इस चारदीवारी को न लांघ पाना उसकी विवशता है। वह बंधी है परिवार से संतान से, और समाज की मर्यादा से। नरेटर की स्मृतियों के अनुसार—“क्या हुआ था मालूम नहीं। तब पता था कि नहीं, बस! हम भागते जा रहे थे। गेहूं के ऊंचे खेत थे। क्लब में बाबू थे और पता नहीं और कौन थे और वह औरत थी।^[6] “बाबू माई जा रही है।^[7] बाबू लौटे थे। रात को माई का हाथ पकड़कर हम सोए थे। उसने घड़ी उतार कर बाबू मुंह पर दे मारी—“दे आओ यह भी उसे,^[8] कभी हमने पूछा माई कहां जा रही थीं तुम? वह बोली, कहीं नहीं। तुम्हें छोड़कर कहीं नहीं जाती।” माई का बाबू के प्रति यह विरोध क्षणिक है। सच तो यह है कि माई का विरोध कभी पूर्ण विरोध का रूप धारण कर ही नहीं पाता। बाबू का जबरदस्त एक्सीडेंट होने पर माई घायल पड़े बाबू की तीमारदारी में दिन भर जुटी रहती है। वह औरत बाबू से मिलने, उन्हें देखने अक्सर घर आती है और माई कुछ नहीं कहती। बस पूरे मनोयोग से बाबू की सेवा में रत रहती है। पति का पर-स्त्री से संबंध स्वीकारने का कारण वैवाहिक संबंध से मिली सामाजिक सुरक्षा है। सुरक्षा के इस चक्र में केवल स्त्री नहीं, उसकी संतान भी सुरक्षित मानी जाती है। अतः स्त्री विवशता में विरोध की स्थिति में नहीं होती। लेकिन इसकी विपरीत स्थिति में पुरुष अपनी पत्नी का किसी परपुरुष के

प्रति लगाव कतई स्वीकार नहीं करता। वह न केवल उसका विरोध करता है अपितु इस अपराध के लिए पत्नी को त्याग तक देता है। परिवार की संस्था की धुरी स्त्री की विवशता उसके परित्याग पर टिकी होती है।

बाबू का हस्तक्षेप का अधिकार माई तक सीमित नहीं रहा। पुरुष स्त्री की सुरक्षा हेतु स्वयं को उसका संरक्षक समझते हुए उसकी भावनाओं व इच्छाओं को भी नियंत्रित करना चाहता है। पत्नी की किसी परपुरुष के प्रति कोमल भावना का विरोध करने वाला पुरुष युवा होती लड़की का समवयस्क लड़कों से मैत्री-संबंध होने पर भी आपत्ति प्रकट करता है। पत्नी, बेटी या किसी भी रिश्ते से वह स्त्री के ऊपर अपना वर्चस्व बनाए रखना चाहता है। सुनैना के बाबू सुनैना के पुरुषों से संबंधों में हस्तक्षेप करना अपना अधिकार समझते हैं। सदा से अपने रौबदार पिता की छाया में दबे व्यक्तित्व वाले बाबू अपने आधुनिक विचारों व स्वतंत्र व्यक्तित्व वाले बच्चों के जीवन में माई के माध्यम से हस्तक्षेप करते हैं। वे सुबोध की अंग्रेज दोस्त जूडिथ के बारे में माई से पूछताछ करते हैं। बाद में सुबोध की रीतिका से दोस्ती होने पर भी बाबू यही रवैया अपना लेते हैं, परंतु खुलकर विरोध नहीं कर पाते। लेकिन सुनैना के हर निर्णय पर उन्हें एतराज था। वह उसकी मेडिकल की पढ़ाई के पक्ष में भी नहीं थे। बाद में उसके द्वारा चित्रकारी करने पर भी बाबू मन ही मन खोजते। वह माई के माध्यम से अपने बच्चों विशेषकर सुनैना पर अपना दबाव डाल कर उसे ड्योढ़ी तक सीमित रखना चाहते हैं—“घर के बाहर औरत के लिए बस बदकारी है। ड्योढ़ी की दीवारों से टकराकर किसी के बोल फिसले और देखते-देखते माई एक निर्णायक खामोशी में चली गई। बाबू पीछे पड़े रहे। किसी भी तरह करो, तुम्हारी वे सुनते हैं, ऐसा बिगाड़ दिया है कि दूसरों का तिरस्कार करते हैं, याचना करो, धमकी दो, तुम समझाओ, खानदान को सर्वनाश से बचाओ, उनके पैरों में गिर के गिड़गिड़ाओ, मारो उन्हें, मां हो, हक है तुम्हारा... वे सुनेंगे तुम्हारी...।”^[9]

माई पराई औरत के आने का दश झेलती है और युवा सुनैना को अपने मित्र विक्रम से दूर होना पड़ता है। लेखिका ने सुबोध के माध्यम से यह सवाल उठाया है कि यदि बाबू की जगह माई घायल होती तो क्या बाबू कभी पुरोहित जी के लड़के का माई को देखने आना बर्दाश्त करते? पितृसत्तात्मक प्रवृत्ति स्त्री-इच्छा का दमन तो करती ही है, साथ ही स्वयं मनमानी कर स्त्री को उसमें हस्तक्षेप करने के अधिकार से भी वंचित रखती है।

सुनैना की दादी अपने पति की अहम् की प्रवृत्ति का शिकार होती हैं। आजीवन उनकी इच्छाओं के अनुरूप रहती हैं, लेकिन माई का दुख नहीं समझती। वह माई से दुर्व्यवहार करती हैं। दादी माई को ‘जागर’, ‘कामचोर’ की संज्ञा देती व उसके हर काम में कोई न कोई कमी निकालती रहती हैं बस! माई का कमजोर व्यक्तित्व ही उसकी एक ऐसी विशेषता है जो दादी को अनुकूल लगती। दादी माई के दबे हुए व्यक्तित्व के लिए उसकी प्रशंसा करती। स्त्री के प्रति स्त्री का इस दमन के भाव के मूल में स्त्री को पुरुष से मिली प्रताड़ना व घुटन है जो कुंठाओं के कारण स्त्री को स्त्री के प्रति ‘परपीड़क’ बना देती है—‘माई की यह एक बात थी जो दादी तक को भाती थी। कम से कम एक गुण था माई में, जिसके लिए वह कभी-कभी उसके सारे दोषों को माफ कर देती—कि दिन बीता जाता है और बहू की आवाज एक बार भी सुनाई नहीं पड़ती। क्लब भी जाती है पर सिर पर पल्लू रहता है और सब कहते हैं कि माता जी! यह आपका ही पुण्य है कि ऐसी दीन हीन, सुशील बहू मिली। कभी जो आंख ऊपर करती हो।’^[10]

उम्र भर सास-ससुर का रौब, पति की उपेक्षा और ड्योढ़ी की चारदीवारी में घुटती माई भले ही अपने अस्तित्व के लिए संघर्ष नहीं कर पाती, परन्तु वह अपनी संतति को ड्योढ़ी में मान्य बरसों से चली आ रही रूढ़ परम्पराओं से मुक्त करवाना चाहती है। सुबोध के लड़का होने की वजह से उसे ड्योढ़ी लांघने में कोई बाधा नहीं आती, लेकिन माई सुनैना के लिए हर परिस्थितियों में सम्बल बनती है। वह चाहती है कि सुनैना उन तमाम सीमाओं का अतिक्रमण करे जिनमें वह जीवन भर बंधी रही है। वह अपने ससुर व पति के विरोध के बावजूद सुनैना को शहर पढ़ने जाने से नहीं रोकती। वह उसकी मेडिकल की पढ़ाई करने की इच्छा का समर्थन करती है, उसकी चित्रकारी पर खुश होती है। बाबू के

विरोध के बावजूद माई का मजबूत समर्थन ही सुनैना के होस्टल जाने में सहायक सिद्ध होता है। माई की सोच स्त्री-पुरुष संबंधों को लेकर भी संकीर्ण नहीं है। वह सुबोध की विदेशी दोस्त जूडिथ तथा रीतिका से मैत्रीपूर्ण व्यवहार करती है। सुनैना के मित्र एहसन और विक्रम भी के प्रति भी माई का व्यवहार सिन्धता-पूर्ण है। बाबू द्वारा सुनैना के मित्रों के संबंध में जांच पड़ताल करने पर माई या तो बाबू को टाल देती है या उनसे चीजों को सही परिप्रेक्ष्य में देखने व स्वस्थ दृष्टिकोण विकसित करने को कहती है। माई सुनैना की मुक्ति में मानो अपनी मुक्ति खोजती है; उसके लिए एक विस्तृत, अंतहीन आकाश की कामना करती है।

माई सुनैना को उसकी इच्छा के विरुद्ध विवाह के बंधन में बांधने के पक्ष में नहीं है, लेकिन वह अपने पति व सास ससुर का विरोध न करने की सूरत में सुनैना से ड्योढ़ी में वैवाहिक रिश्ते के लिए देखने आए लड़के से मिलने का आग्रह करती है, लेकिन लड़का पसंद न आने की सूरत में उसे इन्कार करने की अग्रिम छूट भी दे देती है। माई को अपने दोनों बच्चों पर भरपूर विश्वास है। विशेषकर सुनैना के हर फैसले को माई का समर्थन प्राप्त है। वह सुनैना का पुरुष मित्रों के साथ घूमना-फिरना बुरा नहीं समझती। स्त्री-पुरुषों के संबंधों को नए सिरे से पहचानने की दिशा में माई की दृष्टि आधुनिक है, लेकिन अपने परिवेश, पितृसत्ता के दबाव और विशेषकर घायलवास्था में पड़े अपने पति की वजह से वह सुनैना से विक्रम के संबंध में दो टूक शब्दों में कह देती है—“हो सके तो यहां एक साथ, इस तरह मत रहा करो।”^[11] यही माई अपने घायल पति का अक्सर हालचाल पूछने आई लखनऊ वाली औरत की स्वतंत्र आवाजाही का कतई विरोध नहीं करती।

उपन्यास की नरेटर सुनैना नई पीढ़ी की आधुनिक स्त्री का प्रतिनिधित्व करती है। वह उस सब का विरोध करती है, जो माई हमेशा से चुपचाप करती व सहती आई है। वह माई की पीड़ा से व्यथित है। वह चाहकर भी माई की सहायता नहीं कर पाती, लेकिन माई की कमजोरी से सुनैना आग पाती है, मजबूती पाती है।

गीतांजलि श्री ने माई व सुनैना के माध्यम से परंपरा और नई नैतिकता के द्वन्द्व को उभारा है। यह द्वन्द्व सुनैना को बेचैन कर देता है। वह अपनी सोच के एक सिरे को पकड़ती है तो उसे अनेक जगह उलझा पाती है। माई को मुक्त करवाना चाहती है पर कुछ ठीक से नियत नहीं कर पाती—‘सुनैना माई को बेचारी समझती हैं, उसे ड्योढ़ी से बाहर निकल आने का गर्व है, जब कि बाहर निकलने की ताकत वह माई से ही लेती है। परंपरा और नई नैतिकता के द्वन्द्व में उलझी सुनैना समझ नहीं पाती कि वह माई बने कि न बने। परंपरा ने उसमें माई का असर भरा है जो ‘दूसरों के लिए सहकर’ उन्हें सफलता दिला के अपनी सफलता जानती है। पर सुनैना तो हर लेने में शामिल होना नहीं जानती। वह देना चाहती हैं पर पहले अपने लिए लेना चाहती है।’^[12] सुनैना माई की कमजोरी और उसके सहने की प्रवृत्ति से स्वयं को दूर रखना चाहती हैं—‘माई जो हर ‘देने’ में थी मुझमें भी आ गई। पर मैं तो लड़ी थी, हर लेने में होने के लिए। मैं माई नहीं बन पाऊंगी। वह सिर्फ ही इस सदी में लोप होती जा रही है। मैं माई बन भी सकती तो नहीं बनना चाहूंगी। मुझे माई नहीं बनना। जी जान से लड़ूंगी कि माई न बनूं। जोर से झकझोर कर अपने अंदर से माई को झटका देना चाहती हूँ। हर तरह के ‘सहने’ को निकाल फेंकना चाहती हूँ। वह गलत है, मुझे वह रोकना है।’^[13] सुनैना माई बनने का अर्थ जानती है। वह माई के माध्यम से स्त्री के शोषण की कड़वी सच्चाई का साक्षात्कार करती है, इसीलिए वह उत्सर्ग के लिए तैयार नहीं है—‘मुझे त्याग बुरा लगता है क्योंकि यही माई का बोझिल इतिहास है। मुझे उसी तरह शहादत में मकसद नहीं पाना है। मुझे उसकी तरह नम्रता और उदारता को अपराध नहीं बना देना है, उसके इतिहास से लड़ना है, उसे नकारना है और इसलिए लेना है, लेके पाना है, उसके बाद दूंगी। लेने के साथ दूंगी, पर तब तक लड़ूंगी, उसी से लड़ूंगी, माई जो शाश्वत है, जो मुझमें है, जो आग में, राख में, हमेशा रहेगी, जिसके आगे में शीश नवाती हूँ, उससे लड़ूंगी।’^[14]

सुनैना का माई से द्वन्द्व, माई होने न होने का द्वन्द्व पुरानी पीढ़ी से नई पीढ़ी का द्वन्द्व है। माई सुनैना के विकसित व स्वतंत्र व्यक्तित्व में कहीं अपनी मुक्ति का अहसास पाती है, तो कहीं उसके शिक्षित होकर ड्योढ़ी से मुक्त होने में अपनी घुटन से उबरना चाहती है।

सुनैना की मृत्यु के बाद ड्योढ़ी नहीं छोड़ना चाहती। सुबोध इस बात का कड़ा विरोध करता है। वह नहीं चाहता कि सुनैना भी माई की तरह ड्योढ़ी में घुटकर मिट जाए। सुनैना माई के न रहने पर माई के मिलने का सही अर्थ समझ पाती है। वह सुबोध से कहती है—‘गलत गलत। मैं समझ नहीं पा रही थी, माई मिटी नहीं हैं, हमने उसे मिटा रखा था। मुझे माई नहीं बनना। मैं माई जैसे भी नहीं बनूंगी, मैं चाँहूँ भी तो माई नहीं बन सकती। वह सिफत नहीं मुझमें। मैं माई को झकझोड़ के झटक देती हूँ।’^[15] ‘माई जलती रही, अंदर खींचकर आग को। पर समझे, माई की भी आग थी। खोखल नहीं, आग थी? जिसका दूसरों के लिए जलना हमने देखा था। पर जिसका अपना जलना, अपने लिए हमने नहीं देखा। ठीक-ठाक मैं भी जलूंगी। माई की आग को झटक-झटक कर बाहर खींचती रहूंगी।’^[16] सुनैना ड्योढ़ी छोड़ देती है। यह आधुनिक स्त्री का सोचा-समझा और व्यावहारिक निर्णय है, जो बिना किसी दबाव या मान्यताओं के बंधन से मुक्त होकर लिया गया है।

‘माई’ उपन्यास में संयुक्त परिवार और वह भी जमींदार-परिवार में ‘स्त्री’ की दयनीय अवस्था को इस प्रकार चित्रित किया गया है, जिसमें तीन पीढ़ियों की पारस्परिक असंगति के साथ स्त्री विमर्श उभर आया है। उपन्यास के केन्द्र में माई है, दूसरी पीढ़ी में बाबू-माई, बुआ-फूफा हैं और तीसरी पीढ़ी में भाई-बहिन (सुबोध-सुनैना) हैं। मूल कथा माई के इर्द-गिर्द ही घूमती है। इस कथा के द्वारा जो प्रतिपादित हुआ है, वह है संयुक्त परिवार में, विशेषतः तीन पीढ़ियों के बीच बहू का व्यक्तित्व विकास से वंचित रह जाना। यह वंचना प्रगति-विरोधी भी है और पुरुष प्रधानता को प्रदर्शित करने वाली भी। रचना पितृसत्तात्मकता को संयुक्त परिवार में दादा-दादी की सर्वातिशायी प्रधानता में प्रकट करती है। इस उपन्यास में दादा-दादी की वर्चस्वता का चित्रण उनके संत्रासक व्यक्तित्व को कुछ इस तरह प्रकट करता है कि वे मानो तानाशाह हों। उनके आगे कोई बोलता नहीं, यहां तक कि बाबू भी सिर झुकाए रहते हैं। उनकी हर एक बात आज्ञा होती है। पुरुषवर्चस्वता उनके चरित्र से मूर्तिमान हो उठी है। इस उपन्यास को दो पीढ़ियों को तीसरी पीढ़ी के व्यतिरेक-कंट्रास्ट में रखा गया है। दादा-दादी, बाबू और बुआ-फूफा के रूप में ये पीढ़ियां प्रगति विरोधी, रूढ़िवादी, दोहरी जिंदगी जीनेवाली हैं, जब कि सुबोध और सुनैना नई रोशनी के साथ चल रहे हैं। इसलिए उनकी सोच अलग है। पुरानी पीढ़ी अपनी बहू (माई) को कोई स्वतंत्रता कोई अधिकार नहीं देती। उसकी सारी इच्छाओं का दमन कर दिया गया है। उसे केवल सेवा ‘करना’ और ‘सहना’ है। वह दादा और बाबू दोनों के पर-स्त्रीगमन को भी जानती है, लेकिन सब कुछ चुपचाप सहती है। ये पर-स्त्रीगामी पुरानी पीढ़ियों के पुरुष नई पीढ़ी के सुबोध और सुनैना को नैतिकता, शुचिता और वर्जना का उपदेश देते हैं, जो उन्हें स्वीकार नहीं है। नई पीढ़ी सब जानती-समझती है। वे इस छद्म को अस्वीकार कर देते हैं। इन दोनों व्यतिरेकी पीढ़ियों के बीच फंसी माई के रूप में वह स्त्री है, जो अपने दमन को मूक रहकर झेलती है, लेकिन कोई प्रतिकार नहीं करती। पूरा उपन्यास इसी तनाव को बुनता है और सुबोध-सुनैना की इस चिन्ता को अभिव्यक्त करता है कि मौन रहकर सब कुछ सह जाने वाली इस स्त्री (माई) को इस ड्योढ़ी के दमनचक्र से बाहर कैसे निकाला जाए। माई एक स्त्री भर नहीं है, वह केवल सुनैना सुबोध की मां नहीं है, सिर्फ दादा-दादी की बहू नहीं है वह सभी दमित स्त्रियों की प्रतिनिधि है। यही वजह है कि यह उपन्यास स्त्री-विमर्श की बहुत बड़ी और दृढ़ धुरी पर खड़ा हो जाता है। इस उपन्यास की दमित स्त्री ‘माई’ को नई सोच वाली स्त्री बनाने की मुहिम सुबोध-सुनैना के हाथों में है, जो कुछ-कुछ सफल भी होते हैं। ड्योढ़ी पुरानी सोच का, प्रतिबन्धों का, कैद का प्रतीक है, जिसके बाहर केवल तीन लोग हैं—‘असल में... ये हम तीन... माई, सुबोध, और मैं जिनका असल जीवन ड्योढ़ी के बाहर था। जो बस इन्तज़ार में अभी ड्योढ़ी में जी रहे थे।’^[17]

(पृ. 41)। अर्थात् उपन्यास स्त्री को आज़ाद कर देखना चाहता है, स्वतंत्र सोच वाले व्यक्तित्व की मानिंद। यही तो स्त्रीवादी दृष्टि का भी लक्ष्य है।

स्त्री-विमर्श से जुड़ी हुई ऊपर कही गई ये तमाम स्थितियां नारी को उन प्रतिबन्धों, दबावों और दमनचक्रों से मुक्त देखना चाहती हैं, जहां स्त्री अपनी पूरी अस्मिता को हासिल कर सके। वह पुरुष के बराबर अधिकारों का भोग कर सके। वरण की स्वतंत्रता, निर्णय की स्वतंत्रता प्राप्त कर सके, इस स्थिति का नाम ही ‘नारी-अस्मिता’ है। माई को यह स्थिति दूर-दूर तक प्राप्त नहीं है। माई नाटक नहीं देख सकती (पृ.51), माई पत्र नहीं लिख सकती (51), माई से कोई मिलने नहीं आ सकता (पृ.51)। इन स्थितियों से माई को बाहर निकालने का मतलब था—माई में ‘आज़ाद इच्छाएं भरना’ (पृ. 50)। आज़ादी के लिए आज़ाद होने की सोच चाहिए। सुबोध और सुनैना माई में इसी सोच को पैदा करने की कोशिश करते दिखाई देते हैं। ड्योढ़ी से बाहर निकलने का यही प्रतिकार्य है। ‘माई’ अर्थात् मध्यमवर्गीय भारतीय समाज की स्त्री का अभी भी ड्योढ़ी से निकलना शेष है।

सहायक ग्रंथ सूची

1. गीतांजलि श्री, माई, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, सन् 2004 (पेपरबैक संस्करण), पृ. 9.
2. वही, पृ. 21.
3. वही, पृ. 124.
4. रेखा कस्तवार, स्त्री चिंतन की चुनौतियां, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, सन् 2006, पृ. 168.
5. गीतांजलि श्री, माई, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, सन् 2004 (पेपरबैक संस्करण), पृ. 116.
6. वही, पृ. 52.
7. वही, पृ. 52.
8. वही, पृ. 52.
9. वही, पृ. 95.
10. वही, पृ. 19.
11. वही, पृ. 146.
12. रेखा कस्तवार, स्त्री चिंतन की चुनौतियां, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, सन् 2006, पृ. 171.
13. गीतांजलि श्री, माई, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, सन् 2004 (पेपरबैक संस्करण), पृ. 64.
14. वही, पृ. 167.
15. वही, पृ. 166.
16. वही, पृ. 167.
17. वही, पृ. 41.